CBSE कक्षा 12 समाजशास्त्र

[खण्ड-2] पाठ - 4 ग्रामीण समाज में विकास एवं परिवर्तन

पुनरावृत्ति नोट्स

मुख्यबिन्दुः-

1. भारतीय समाज प्राथमिक रूप से ग्रामिण समाज है। 2011 की जनगणना के अनुसार 60% लोग गाँव में रहते है। उनका जीवन कृषि तथा उनके संबंधित व्यवसाय पर चलता है तथा भूमि उत्पाद एक महत्त्वपूर्ण साधन है। भारत के विभिन्न भागों के त्यौहार पोंगल (तमिलनाडु), बैसाखी (पंजाब), ओणम (केरल), हरियाली तीज (हरियाणा), बीहू (असम) तथा उगाड़ी (कर्नाटक) मुख्य रूप से फसल काटने के समय मनाए जाते है।
    - कृषि तथा संस्कृति का घनिष्ठ संबंध है। ग्रामीण भारत की सामाजिकता भी कृषि आधारित है। व्यवसायों को भिन्नता यहाँ की जाति व्यवस्था प्रतिदर्शित करती है। जैसे धोबी, लौहार, कुम्हार, सुनार, नाई आदि।
2. **कृषिक संरचना-** भारत के कुछ भोगों में कुछ न कुछ जमीन का टुकड़ा काफी लोगों के पास होता है। जबकि दूसरे भागों में 40 से 50 प्रतिशत परिवार के पास भूमि नहीं होती है। उत्तराधिकार के नियमों और पितृवंशीय नातेदारी के कारण महिलाएँ जमीन की मालिक नहीं होती। भूमि रखना ही ग्रामीण वर्ग संरचना को आकार देता है। कृषि मजदूरों की आमदनी कम होती है तथा उनका रोजगार असुरक्षित रहता है। वर्ष में वे काफी दिन वे बेरोजगार रहते है।
    - प्रत्येक क्षेत्र में एक या दो जाति के लोग ही भूमि रखते हैं तथा इनकी संख्या भी गांव में महत्त्वपूर्ण है। समाज शास्त्री एम.एन. श्री निवास ने ऐसे ही लोगों को प्रबल जाति का नाम दिया है। प्रबल जाति राजनैतिक आर्थिक रूप से शक्तिशाली होती है ये प्रबल जाति लोगों पर प्रभुत्व बनाए रखती है। जैसे पंजाब के जाट सिक्ख, हरियाणा तथा पश्चिम उत्तरप्रदेश के जाट, आन्ध्र प्रदेश के कम्मास व रेडडी, कर्नाटक के बोक्का लिगास तथा लिगायत बिहार के यादव आदि। अधिकतर सीमान्त किसान तथा भूमिहीन लोग निम्न जातीय समूह से होते है। वे अधिकतर प्रबल जाति के लोगों के यहां कृषि मजदूरी करते थे। उत्तरी भारत के कई भागों में अभी भी बेगार और मुफ्त मजदूरी जैसे पद्धति प्रचलन में है।
    - शक्ति तथा विशेषाधिकार उच्च तथा मध्यजातियों के पास ही थे। संसाधनों की कमी और भूस्वामियों की आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभाव के कारण बहुत से गरीब कामगार पीढ़ियों से उनके यहां बंधुआ मजदूर की तरह काम करते है। गुजरात में इस व्यवस्था को हलपति तथा कर्नाटक में जीता कहते है।
3. **भूमि सुधार के परिणाम**
    1. **शासन करने वाले समूह-**
        - जमींदारी व्यवस्था- इस प्रणाली में जमींदार भूमि का स्वामी माना जाता था। सरकार से कृषक का सीधा सम्बन्ध नहीं होता था। अपितु जमींदार के माध्यम से भूमि का कर (कृषकों द्वारा) सीधा सरकार को दिया जाता था। जैसे कि स्थानीय राजा या जमीदार भूमि पर नियंत्रण रखते थे। किसान अथवा कृषक जो कि उस भूमि पर कार्य करता था, वह फसल का एक पर्याप्त भाग उन्हें देता था।
        - रैयतवाड़ी व्यवस्था- (रैयत का अर्थ है कृषक) इस जमीन पर पहले से ज्यादा नियंत्रण जमीदार को मिला।

औपनिवेशिकों ने कृषि पर बड़ा टैक्स लगा दिया था, इस प्रकार कृषि उत्पादन कम होने लगा। कुछ क्षेत्रों में यह सीधा ब्रिटिश शासन के अधीन था जिसे रैयतवाडी व्यवस्था कहते थे (तेलगू मे रैयत का अर्थ है कृषक) इस प्रकार जमीदार के स्थान पर कृषक स्वयं टैक्स चुकाता था तथा इस प्रकार इनका टैक्स भार कम हो गया तथा इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन तथा सम्पन्नता बढ़ी।

- स्वतन्त्र भारत में नेहरू और उनके नीति सलाहाकरों ने 1950 से 1970 तक भूमि सुधार कानूनों का एक श्रृंखला शुरू की। राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर विशेष परिवर्तन किए, सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन थे-
  - जमीदारी व्यवस्था को समाप्त करना परन्तु केवल कुछ क्षेत्रों में ही हो पाया।
  - पट्टादारी को खत्म करना तथा नियन्त्रण अधिनियम अधिकनयम, परन्तु यह केवल बंगाल तथा केरल तक ही सीमित रहा।
  - भूमि की हदबंदी अधिनिमय जो राज्यों का कार्य था इसमें भी बचाव के रास्ते और विधियां निकाल ली गई।
  - भूमि सुधार न केवल कृषि उपज को बढ़ाता है बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी हटाना और सामाजिक न्याय दिलाने लिए के भी आवश्यक है।

4. **बेनामी बदल-** भू-स्वामियों ने अपनी भूमि रिश्तेदारों या अन्य लोगों के बीच विभाजित की परंतु वास्तव में भूमि पर अधिकार भू-स्वामी का ही था। इस प्रथा को बेनामी बदल कहा गया।
5. **हरित क्रांति और इसके सामजिक परिणाम -**
   - हरित क्रांति और इसके सामाजिक परिणाम:-
     - 1960-70 के दशक में कृषि आधुनिकरण का सरकारी कार्यक्रम जिसमें आर्थिक सहायता, अंर्तराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी गई थी तथा यह अधिक उत्पादकता वाले (संकर बीजों) के साथ कीटनाशक, खादों तथा किसानों के लिए अन्य निवेश पर केन्द्रित थी। इस क्रांति के कारण मध्यम तथा बड़े किसान ही नई तकनीक का लाभ उठा सके। ज्यादातर कृषक स्वयं के लिए ही उत्पादन कर पाते है तथा बाजार के लिए असमर्थ होते है। इन्हे सीमान्त (जीवन निर्वाही कृषक) तथा आमतौर पर कृषक की संज्ञा दी गई है। कई मामलों में पट्टेदार कृषक बेदखल भी हुए क्योंकि भू-स्वामियों ने जमीन वापिस ले ली तथा सीधे कृषि कार्य करना अधिक लाभदायक था। किसान वह है जो फसल का कुछ हिस्सा अपने लिए रखता है तथा बाज़ार से भी जुड़ा हुआ है। कृषक वह है जो फसल का उत्पादन सिर्फ अपने लिए करता है।
     - हरित क्रांति मुख्य रूप से गेहूँ तथा चावल उत्पाद करने वाले क्षेत्रों पर ही लक्षित थी।
     - हरित क्रान्ति कुछ क्षेत्रों में जैसे- पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तटीय आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में चली।
     - नयी तकनीक द्वारा कृषि उत्पादकता में अत्याधिक वृद्धि हुई।
     - धनी किसान और धनी हो गए तथा भूमिहीन तथा सीमान्त भू-धारको की दशा और बिगड़ गई।
     - कृषि मजदूरों की माँग बढ़ गई।
   - **हरित क्रांति का दूसरा चरण**
     - सुखे तथा आंशिक सिंचित क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। किसान बाजार पर निर्भर हो गए हैं। बाजारोंन्मुखी

कृषि में विशेषतः एक ही फसल उगाई जाती है। जिन क्षेत्रों में तकनीकी परिवर्तन हुआ वे अधिक विकसित हुए तथा अन्य क्षेत्र पूर्ववत् रहे जैसे बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, तेंलगाना आदि। भारतीय कृषकों की बहुत संघन विस्तृत तथा पारम्परिक जानकारी लुप्त होती जा रही है जिन्हें किसानों ने सदियों में उन्नत किया था। इसका कारण संकर तथा सुधार वाले बीजों को प्रोत्साहित किया पुन: कृषि के पारम्परिक तरीके तथा अधिक सावयवी बीजों के प्रयोग की और लौटने की सलाह दे रहे हैं।

6. **स्वतन्त्रता के बाद ग्रामीण समाज में परिवर्तन:-** स्वतन्त्रता के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक संबंधों की प्रकृति में अनेक प्रभावशाली रूपान्तरण हुए। इसका कारण हरित क्रांति रहा।
    - गहन कृषि के कारण कृषि मजदूरों की बढ़ोतरी।
    - नगद भुगतान।
    - भू-स्वामियों एवं किसान के मध्य पुश्तैनी संबंधों में कमी होना।
    - दिहाड़ी मजदूरों का उदय।

    - भूस्वामियों से कृषि मजदूरों के मध्य संबंधों की प्रकृति में वर्णन समाज शास्त्री जॉन ब्रेमन-संरक्षण से शोषण की और बदलाव में किया था। (ब्रेमन 1974) जहाँ कृषि का व्यापारीक रण अधिक हुआ, जिसे कुछ विद्वानों ने पूँजीवादी कृषि का रूप कहा, क्योंकि विकसित क्षेत्रों के ग्रमीण विस्तृत अर्थव्यवस्था से जुड़ते जा रहे थे। मुद्रा का बहाव गांव की ओर बढ़े तथा व्यापार व रोजगार भी बढ़ा यह प्रक्रिया औपनिवेश काल से महाराष्ट में कपास की खेतीबाडी से शुरू हो गया था। राज्यों ने स्वतन्त्रता के बाद सिंचाई, सड़कों तथा सरकारी संरचाओं द्वारा ऋण की सुविधा ने इसकी गति काफी बढ़ाई। इसका सीधा प्रभाव कृषिक संरचना तथा गांवों पर पड़ा। सम्पन्न किसानों ने अन्य प्रकार के व्यापारों में निवेश करना शुरू कर दिया तथा ग्रामीण क्षेत्रों से कस्बों में रहने लगे। नए अभिजात वर्ग बने जो आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से प्रबल हो गए। (रहन 1995) इसके साथ ही उच्च शिक्षा का विस्तार, निजी व्यवसायिक महाविद्यालयों की स्थापना से नव ग्रामीण अभिजात वर्ग द्वारा अपने बच्चों को इनमें शिक्षा देकर नगरीय मध्यम वर्ग को बढ़ावा मिला। विभिन्न स्थानों पर इनका प्रभाव विभिन्न देखा गया जैसे- केरल के काफी लोग खाड़ी प्रदेशें में जाने लगे।

6. **मजदूरों का संचार:-** प्रवासी मजदूरों की बढ़ोतरी कृषि के व्यापारीकरण से जुडी है। मजदूरों तथा भू-स्वामियों के बीच संरक्षण का पारम्परिक बंधन टूटना तथा पंजाब जैसे हरित क्रांति द्वारा सम्पन्न क्षेत्रों मे कृषि मजदूरों की मांग बढ़ने से मौसमी पलायन का एक नया रूप उभरा। 1990 के दशक से आई ग्रामीण असमानताओं ने बहुस्तरीय व्यवसायों की ओर बाध्य किया तथा मजदूरों का पलायन हुआ। जॉन ब्रेमन ने इन्हें घुमक्कड़ मजदूर (Foot Loose Labour) कहा। इन मजदूरों का शोषण आसानी से किया जाता है। मजदूरों के बड़े पैमाने पर संचार से ग्रामीण समाज, दोनों ही भेजने वाले तथा प्राप्त करने वाले क्षेत्रों पर अनेक महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़े है। उदाहरण के लिए निर्धन क्षेत्रों में जहाँ परिवार के पुरुष सदस्य वर्ष का अधिकतर हिस्सा गाँवों से बाहर काम करने में बिताते है, कृषि मुलरूप से एक महिलाओं का कार्य बन गया है। महिलाएँ भी कृषि मजदूरों के मुख्य स्त्रोत के रूप में उभर रही है। जिससे कृषि मजदूरों का महिलाकरण हो रहा है।
7. **भूमण्डलीकरण, उदारीकरण तथा ग्रामीण समाज-** भूमण्डलीय तथा उदारीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ निश्चित फसल उगाने को कहती है तथा ये किसानों को जानकारी व सुविधाएँ भी देती है। इसे संविदा कृषि कहा जाता है।
    - संविदा कृषि सुरक्षा के साथ-साथ असुरक्षा भी देती है। किसान इन कंपनियों पर निर्भर हो जाते है। खाद व

कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से पर्यावरण असुरक्षित हो जाता है।

- कृषि रियायतों में कमी से उत्पादन लागत बढ़ी है। बाजार स्थिर नहीं है बीमारी सूखा बाढ़ तथा हानिकारक जन्तु, उधार पैसा लेना आदि से परिवार में संकट आ जाता है। कृषि बहुत से लोगों के लिए अरक्षणीय होती जा रही है। कृषि के मुद्दे अब सार्वजनिक मुद्दें नहीं रहे है, गतिशीलता की कमी के कारण कृषक शक्तिशाली दबाव समूह बनाने में असमर्थ हैं जो नीतियों को अपने पक्ष में करवा सकें।
- संविदा खेती में कम्पनी और जमीन मालिक तय करते थे कि क्या उपजाना है इसके लिए किसानों को बीज आदि प्रदान करते थे। कम्पनी भरोसा देती थी। कि वे अनाज आदि को खरीद लेगें। जिसका मूल्य पहले ही तय हो जाता था। इसमें कम्पनी पूँजी भी देती है।
- संविदा खेती बहुत ही आम है, ख़ास करके फूल की खेती, फल, अंगूर, अनार, कपास के क्षेत्र में जहाँ खेती, किसानों को वित्तीय सुरक्षा प्रदान करती है वहीं यह किसानों के लिए अधिक असुरक्षित भी बन जाती है।

8. **संविदा खेती:**
    - इसमें किसान अपने जीवन व्यापार के लिए इन कपनियों पर निर्भर हो जाते है।
    - निर्यातोन्मुखी उत्पाद जैसे फूल, और खीरे हेतू 'संविदा खेती' का अर्थ यह भी है कि कृषि भूमि का प्रयोग उत्पादन से हट कर किया जाता है।
    - 'संविदा खेती' मूलरूप से अभिजात मदों का उत्पादन करती है तथा चूँकि यह अक्सर खाद तथा कीटनाशक का उच्च मात्रा में प्रयोग करते हैं इसलिए यह बहुधा पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित नहीं होती।
9. **किसानों की आत्महत्या के कारण**
    - समाजशास्त्रियों ने कृषि तथा कृषक समाज में होने वाले सरंचनात्मक तथा सामाजिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया है।
    - आत्महत्या करने वाले बहुत से किसान 'सीमांत किसान' थे जो मूल रूप से हरित क्रांति के तरीकों का प्रयोग करके अपनी उत्पादकता बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे।
    - कृषि रियायातों में कमी के कारण उत्पादन लागत में तेजी से बढ़ोतरी हुई है बाजार स्थिर नहीं है तथा बहुत से किसान अपना उत्पादन बढ़ाने के लिए मंहगे मदों में निवेश करने हेतू अत्यधिक उधार लेते हैं। किसान ऋणी हो रहे हैं।
    - खेती का न होना, तथा कुछ मामलों में उचित आधार अथवा बाजार मूल्य के आभाव के कारण किसान कर्ज का बोझ उठाने अथवा अपने परिवारों को चलाने में असमर्थ होते है। आत्महत्याओं की घटनाएँ बढ़ रही है। ये आत्महत्याएँ मैट्रिक्स घटनाएँ बन गई है।